ISSN: 0973-0583

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्वास्थ्य और पर्यावरण

डॉ० अवन्तिका कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग

जगत नारायण लाल कॉलेज, पटना, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

शोध सार

भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कृत भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है। भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व ज्ञान का दीपक सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में ही प्रज्वलित हुआ। जब विश्व में अन्य संस्कृतियां प्रस्फुटित हो रही थीं, उस समय हमारी भारतीय संस्कृति नव युवती के सदृश संपूर्ण विश्व को आकर्षित कर रही थी। संस्कार की भाषा संस्कृत में स्वास्थ्य और पर्यावरण का अपार भंडार है। संस्कृत भाषा ज्ञान का वह अक्षय पात्र है जो अपनी प्रचुरता से सदैव जीवन पथ का प्रत्येक क्षण आलोकित करता है। स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी ज्ञान वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य में समुद्र में रत्न सदृश विखरे पड़े है। संस्कृत काव्यों में चाहे वह पद्य काव्य हो या गद्यकाव्य प्रायशः मंगलाचरण में संसार सर्वे सुखिनः 'निरामयाः' की कामना की गयी है। संस्कृत में काव्य रचना का एक प्रयोजन शिवेतर रक्षतये भी है (1) रघुवंशम् और मयूर शतकम् इसके स्पष्ट उदाहरण है। आयुर्वेद और योगशास्त्र समस्त रूपेन स्वास्थ्य मार्ग प्रदर्शक ग्रन्थ है। पर्यावरण प्रेम आदि कवि बाल्मीकि से लेकर लौकिक कवि कालिदास, माघादि तक दिखता है।

संकेत शब्द : जीवन शैली, ब्रह्म मुहूर्त, पर्यावरण, स्वास्थ्य, भारतीय संस्कृति, संस्कार और प्रकृति पूजन।

प्रस्तावना :

संस्कृत में स्वास्थ्य की चर्चा अनुपम है। संस्कृत मन्त्रों में इतनी शक्ति है कि यदि गहरी आस्था के साथ मन्त्रोच्चार किया जाए तो कई रोगों का विनाश-बिना औषधि से हो जाता है। वेदों का उद्‌भव जनकल्याण के लिए ही हुआ है। वेदों में अधिकांश देवताओं की स्तुति संसार के कल्याण के लिए की गई है।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्‌धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो आरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।ऋ० 1-89-6 (2)

ऋग्वैदिक देवता आश्विन को वैद्य कहा गया है। वे एक महान वैद्य थे, जिन्होंने च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार कर उन्हें पुनः दृष्टि प्रदान थी। ऋग्वेद आश्विन देवता की पचास सूक्तों में स्तुति गयी है। आश्विन युगल देवता एवं लोक स्वास्थ्य लिए महत्वपूर्ण है, उन्होंने कृशकाय आत्रि मुनि को हृष्ट-पुष्ट बना दिया।

हिमेनाग्निं घ्रमससम वारपेथां पितृमनीमूर्जमस्मा अधत्तं।
ऋबीसे अत्रिमाश्विनावतनीत मुत्रिन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति।।3।।

ऋग्वेद में आश्विन कुमारों के कई महान अद्‌भुत कार्यों का वर्णन है जो आज चिकित्सा क्षेत्र में शोध का विषय बना हुआ है। वर्तमान समय में विश्व में आयुर्वेदिक ज्ञान विकसित करने के लिए लगातार प्रयास हो रही है, जिससे आयुर्वेद की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है। यही कारण है संस्कृत के प्रति लोगों का ध्यान पुनः आकृष्ट हुआ है। अंग्रेजी शासन में गुरुकुल विनाश होने के कारण अंग्रेजी औषधियों का काफी प्रयोग बढ़ गया। लेकिन हमारे देश की जलवायु उन औषधियों के अनुकूल नहीं होने के कारण इसका दुष्परिणाम सामने प्रकट होने लगा। महर्षि चरक ने लिखा है- "यस्य देशस्य यो जन्तु तज्जं तस्पौषधं हितं"।

अर्थात् जो प्राणी जिस देश में उत्पन्न होता है उसके लिए उसी देश में उत्पन्न औषध हितकर हो सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की हुई कि लोग वैदिक परम्परा की ओर लौटे। वैदिक संहिताओं, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थों में चिकित्सा पद्धति का अथाह भंडार है। आयुर्वेदिक चिकित्सा का मूल वेद ही है। वैदिक साहित्य में वैद्य कर्म की कुशलता का अनेक आख्यान वर्णित है, जिन्हें पढ़कर वैज्ञानिक भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं।

संस्कृत में स्वास्थ्य विज्ञान की विशेषता है कि इसमें न सिर्फ व्याधियों का नाश किया जाता है कि अपितु

ऐसा जीवन आचरण वर्णित है जिससे लोग निरोगी जीवन यापन करते हैं। वायु पुराण में परमेश्वर कहते हैं कि मैं धनवतरी का अवतार ग्रहण कर वायु से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर संसार को आरोग्य कर दूंगा।

अहं धनवंतरिर्भूत्वा अभिगम्य मरुत्त्वत:।

आयुर्वेदम् करिश्ष्यामि मर्त्यलोकं निरामयं।।

हमारे सनातन ऋषि मुनि विशुद्ध भारतीय जीवन यापन प्रणाली के कारण ही स्वस्थ और शतायु रहते थे। प्राचीन चिकित्सा पद्धति अर्थात् स्वास्थ्य विज्ञान पूर्णता पर्यावरण पर ही आश्रित है। वायु पुराण में भगवान शिव की औषधि और वृक्षों का उत्पादक कहा गया है।

नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नम: ।।4।।

यही कारण है कि भारत वर्ष में आरंभ काल से ही वृक्षों के संरक्षण के लिए उसकी पूजा की जाती है। वृक्षों के साथ-साथ हमारे देश में पर्वत पूजन का भी प्रचलन है। वायु पुराण में कहा गया है कि चंद्रमा द्रोण और केसरी नामक पर्वत पर औषधियां मिलती है जो वैदिक वैद्य आश्विन कुमारों द्वारा स्थापित की गई है।

द्वितीय पर्वतश्चन्द्र: सर्वोशधिसमन्वित:।

आश्विभ्याममृतसयार्थे ओषध्यस्तत्र संस्थिता।।5।।

और भी -

चतुर्थ: पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबला:।

विशल्पकारणो चैव मृतसंजीवनी तथा ।।6।।

अर्थात् इस द्रोण पर्वत पर विशाल कारणी और मित्र संजीवनी आदि वरदायिनी औषधियां पाई जाती हैं। यह वही मृत संजीवनी बूटी है जिससे लक्ष्मण को जीवनदान मिला था 'लाये सजीवन लखन जियावे'।

ब्रह्म वैवर्त पुराण में स्वास्थ्य जीवन के लिए नियम निर्धारित करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार गरूड़ को देखकर सर्प भाग जाते हैं उसी प्रकार रोगों के उपाय जानने वालों के पास रोग नहीं आते।

एते चौपायवेत्तारं नगच्छन्तिसंगतम्।

पलायन्ते च च तं दृष्टया वैनतेयमिवोरगा: ।।7।।

स्वस्थ जीवन यापन के लिए कुछ नियम निर्धारित किये गये है। शीतल जल से नेत्र प्रक्षालन, नित्य व्यायाम, पैरों के तलवे में तेल मालिश, कान और सिर में तेल डालना। इन सब कामों से अरावस्था और व्याधि दूर रहता है। वसन्त ऋतु में प्रात: सायं टहलने, चिरैता के सेवन करने, गहरी नींद लेने और सज्जन लोग के सम्पर्क में रहने से समय पूर्व वृद्धवास्था का आगमन नहीं होता। कूपजल, नदीजल, तालाब और बावरी के जल में स्नान, चंदन का सेवन और ग्रीष्म ऋतु में शीतल पवन का सेवन जरावस्था को दूर रखने में सहायक होते हैं। वर्षा ऋतु में गर्म जल से स्नान एवं वर्षा के जल का सेवन स्वास्थ्य के लिए हितकारी होता है। वर्षा ऋतु में हितकारी एवं सुपाच्य भोजन पर बल दिया गया है। शरद ऋतु में सुबह का भ्रमण वर्जित बताया गया है। नदी, कुआं, तालाब के स्वच्छ जल में स्नान का विधान किया गया है। हेमन्त ऋतु में भी नदी, कुआँ तालाब के स्वच्छ जल में स्नान, चिरैता का सेवन एवं ताजे व सुपाच्य भोजन करने वाले व्यक्ति वृद्धावस्था को शीघ्र प्राप्त नहीं होते। (8)

महर्षियों के इस चिन्तन में वैज्ञानिकता छुपी है। वसन्त और हेमंत ऋतु में चिरैता का सेवन इसलिए बताया गया है कि इस ऋतु में चर्म में संक्रमण की शंका प्रबल हो जाती है, और चिरैता रक्त शोधक का कार्य करता है। अत: इसके सेवन से चर्म विकार की समस्या पास नहीं आती है। नदी, कुआँ के तालब के जल में यह विशेषता इसका पानी ठंड में गर्म और ग्रीष्म ऋतु में ठंडा रहता है। इसीलिए प्रत्येक ऋतु में इसके जल का सेवन करने का विधान किया गया है। वर्षा का जल औषधी गुणों से युक्त होता है, जो वर्षा ऋतु जनित चर्म रोगों का विनाश करता है। शरद् ऋतु में ठंडी वायु का प्रकोप बढ़ जाता है। इसीलिए इस ऋतु में भ्रमण का निषेध किया गया है।

हमारे शास्त्रों में रोगों के निदान का ही विधान नहीं है, अपितु ऐसे नियम बताये गये हैं कि लोग बीमार ही नहीं पड़े। शास्त्रोक्त नियमों का यदि ठीक तरह से पालन किया जाय तो लोग सदैव निरोग रहेंगे। हमारे ऋषि-मुनि के निरोग रहने का रहस्य यही था। ब्रह्मवैवर्त पुराण में स्वास्थ्य जीवन के लिए कहा गया है-

भुङ्क्ते नवात्रमुष्णश्च जरा तं नोपगच्छति।

भुङक्ते सदन्नं क्षुधाकाले तृष्णायां पीयते जलं ।।1।।

अर्थात् जो व्यक्ति भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर जल का सेवन करता है वह शीघ्र वृद्ध नहीं होता बल्कि सदैव निरोग और युवा रहता है। इस विषय पर दृष्टिपात किया जाए तो प्रतीत होता है कि हमारा स्वास्थ्य विज्ञान पूर्णत: पर्यावरण पर ही आधारित है और हमारा

स्वास्थ शरीर प्रकृति पर ही आश्रित है। पर्यावरण या प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है तभी रोगों का आगमन होता है। हमारे ऋषि मुनि स्वस्थ और दीर्धायु इसीलिए थे कि पर्यावरण के सानिध्य में रहते थे। वे स्वच्छ शीतल जल और वायु का सेवन एवं रसापन युक्त फल-फूल कन्दमूलों का भक्षण करते थे। शनैःशनैः हम आधुनिकता की ओर बढ़ते गये और पर्यावरण से दूर होते गये। कालान्तर में नाना प्रकार की व्याधियों का हम शिकार होते गये।

पर्यावरण प्रेमी हमारा समाज कृत्रिमता की ओर बढ़ता गया। आज लोग स्वच्छ वायु को छोड़कर वातानुकूलित का प्रयोग करते हैं। ताजे जल को त्याग कर मिनरल वाटर का प्रयोग बढ़ रहा है। ताजे फल- सब्जी का सेवन कम और डब्बा बंद खाद्य सामग्री का प्रचलन अधिक है। इस सब चीजों का दुष्परिणाम किसी से छुपा नहीं है। आज समय से पूर्व लोगों के बाल सफेद हो रहे, चेहरे पर झुर्रियाँ और आँखों में चश्मा आधुनिकता का प्रतीक है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज बच्चे बगीचे में कम नेत्रालय में अधिक नजर आते हैं। बूढ़े लोग चौपालों पर कम अस्पतालों में अधिक नजर आते हैं।

आधुनिक साहित्य से भी धीरे-धीरे पर्यावरण लुप्त हो रहा है। हमारे संस्कृत काव्यों में पर्यावरण का जितना वर्णन मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। बाल्मीकि हो या कालिदास, प्रकृति के सभी प्रेमी है। हमारे देश में नदी को माँ के समान पूजनीय माना गया है। उनके संरक्षण के लिए उनकी पूजा की जाती थी।

पर्यावरण संरक्षण का ज्ञान जितना संस्कृत साहित्य में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। बरगद, पीपल, नीम, तुलसी, आम, महुआ, आंवला आदि अनेक पेड़ पौधे हैं, जिनकी पूजा की जाती है। विभिन्न पेड़ों में भिन्न-भिन्न देवी देवता का निवास माना गया है इसलिए उन पेड़ों को ना तो काटा जाता है और न जलाया जाता है। पर्यावरण की दृष्टि से इन पेड़ो का महत्व इसलिए है कि सभी का अपना औषधीय महत्व है। ये वायु को शुद्ध करते हैं। पर्यावरण के प्रदूषित होने से सभी प्राणी नष्ट हो जाते हैं। हवा में दुष्ट तत्वों का समावेश हो जाता है। प्रकृति विकृत होती जाती है। प्रकृति के अनियमित दोहन से भयंकर दुष्परिणाम उत्पन्न होता है। ऐतरेय उपनिषद में आकाश वायु जल और अग्नि इन पाँच तत्वों को पंचमहाभूत माना गया है। इसी पंचभूतों से सृष्टि का निर्माण होता है। इन पाँचों महाभूत को देवता माना गया है। माताभूमि पुत्रोऽयं पृथिव्याः द्यौः ह पृथ्वी हमें धारण करती है, आकाश पालन करता है, जल हमारे प्राणों की रक्षा करता है और वृक्ष आदि हमारे लिए जीवन दाता है। (10)

हमारे वैदिक वांगमय में पर्यावरण शब्द का साक्षात् प्रयोग नहीं मिलता। पर्यावरण संरक्षण विषयों पर कहीं भी प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है। हमारे प्राचीन सनातन वैदिक काल में इसकी आवश्यकता नहीं थी। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हमारे ऋषि मुनि पर्यावरण के प्रति लापरवाह थे अपितु पर्यावरण संरक्षण उस समय नित्य कर्म में सम्मिलित था। बचपन से ही यह संस्कार और शिक्षा दी जाती थी कि उसका संरक्षण स्वतः हो जाता था।

हमें बताया जाता था कि औषधियों की हिंसा मत करो अर्थात् वनस्पतियों की क्षति मत करो। पेड़ों को मत काटो। नदियों की शुद्धता बनायें रखो। इन सब शिक्षा से ही पर्यावरण संरक्षण का उपदेश मिल जाता था। पृथक रूप से पर्यावरण संरक्षण की मुहिम चलाने की आवश्यकता नहीं थी।

अधर्व वेद में कहीं कहीं पर्यावरण की चर्चा है- "पर्यभवत् अदृता परिभवन्ति विश्वतः परिवृता (11)

किन्तु पर्यावरण शब्द का नहीं है। हमारे सनातन साहित्यों में उन्हें देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। उन्हें हम माता-पिता के तुल्य मानते हैं। अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को वेदों में महत्वपूर्ण इसीलिए माना गया है कि वह दिन रात आक्सीजन छोड़ता है और वातावरण को शुद्ध करता है। जल हमारे देवता हैं, वृक्ष हमारे देवता हैं। वैदिक वांगमय में संरक्षण घटक न मानकर वृक्षादि को धर्म से जोड़ दिया गया है। देव रूपों में उनकी स्तुति की गयी है। जितने भी पर्यावरण के तत्व है सबमें देवत्व भाव बताकर उनकी अराधना की गयी है। अग्नि आदि विध्वंसकारी तत्वों की शान्ति के लिए उनकी स्तुति की गयी है, विनाशकारी रूप न धारण करे और विनाश से हमारी रक्षा करे। इंद्र की भी स्तुति की गयी है कि हमें आवश्यकतानुसार जल (वृष्टि) प्रदान करें। पर्यावरण संरक्षण में इन्द्रदेव की कृपा की बहुत आवश्यकता है। यदि इन्द्रदेव प्रसन्न रहेंगे तभी चारों तरफ हरियाली होगी। खेत-खलिहानों में फसलें लहरायेगी। इस प्रकार पर्यावरण के संरक्षण के जितने भी संघटक तत्व है उनमें संतुलन बनाये रखने के लिए वेद आरण्यक पुराण आदि जितने भी वैदिक वांगमय है उनमें उनकी स्तुति की गयी है। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में ही पर्यावरण संरक्षण का रहस्य समाहित है।

पर्यावरण शब्द के अर्थ पर यदि ध्यान दिया जाए तो इसका सामान्य अर्थ होगा पृथ्वी चरितः यत् आवरणम् अर्थात् चारो तरफ जो आवरण है, जो स्थित है उसे पर्यावरण कहा जाता है। प्रकृति पर्यावरण का निर्माण करती है। पर्यावरण प्रकृति का ही दूसरा नाम है। यदि प्रकृति है तभी पर्यावरण है और जब पर्यावरण है तभी प्रकृति है। दोनों एक दूसरे का पूरक है। जीव से सम्बन्ध जो भी चारों ओर व्याप्त है, जितने भी मनुष्य हैं, जलचर हैं, उद्भिज (वृक्ष), स्वेदज हैं, अण्डज हैं सभी प्रकार के प्राणी इसमें आ जाते हैं। अतिसूक्ष्म से अति स्थूल जिनमें भी प्राणी है सबका समावेश इसमें हो जाता है। अतिसूक्ष्म का तात्पर्य है चींटी से लेकर अतिस्थूल हाथी के बीच जितने भी प्राणी हमारे पृथ्वी के चारों तरफ है सब इसमें समाहित हो जाते हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण इस पर प्रभाव डालता है। वायु दूषित हो या जल, इनका जीवों पर प्रभाव पड़ता है। अतः प्रकृति ने जो दिया है उसका संरक्षण आवश्यक हो जाता है। जिस वातावरण में हम रहते हैं उसे संरक्षित रखना हमारा परम कर्तव्य है।

हमारे देश की सनातन संस्कृति में पर्यावरण स्वच्छता के प्रति सदैव जागरूकता दिखलायी गयी है। आज की भाँति पर्यावरण संरक्षण का प्रलाप तो नहीं किया अपितु उसे पिता और पुत्र के समान प्रेम और सम्मान का भाव दिया गया है। जिस प्रकार बिना क्षति पहुंचाये लोग पुत्र और पिता की देखभाल करते हैं उसी प्रकार वृक्षों की भी की जाती थी। ऋषि मुनि लोग वृक्षों से पत्ते तक नहीं तोड़ते थे, अपितु स्वयं विशीर्ण पत्रों का सेवन करते थे।

स्वयं विशीर्ण द्रमपर्ण वृत्तिता परा ही काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्प पाकीर्णमतः प्रियम्वदाँ वदन्त्यपर्णति चतां पुराविदः (12)

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वृक्षों को शकुन्तला का सहोदर भाई कहा है। चतुर्थ अंक में वन ज्योत्सना को लताभगिनी कहकर सम्बोधित किया है। शकुन्तला पेड़-पौधों से इतना अपनत्व रखती है कि उसे बिना जल दिये स्वयं जल ग्रहण नहीं करती थी और उसके नवीन पत्तों को तोड़ा नहीं करती थी। पर्यावरण संरक्षण इससे सटीक उदाहरण और क्या हो सकता है। जहां पेड़े-पौधों को परिवार के सदस्यों के सदृश प्यार और सम्मान दिया जाता है।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति हमारे ऋषि मुनि भी काफी सजग रहते थे। वातावरण के दूषित वायु को शुद्ध करने के लिए प्रतिदिन हवन करते थे। हवन में दीप, द्रव्य, तिल, अक्षत, विल्वपत्र, अंगरू, जौ, चंदनकाष्ठ तथा घृत आदि उपयोग में लाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार चन्दन का अपना गुण धर्म होता है। सामान्य वस्तुओं के जलने से जो धूप उत्पन्न होता है, उन गुणों की अपेक्षा इस हवनीय द्रव्यों से अंतरिक्ष में एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण होता है। वातावरण विनाशकारी तत्वों से रहित हो जाता है। विनाषक विषाणु और जीवाणु नष्ट हो जाता है, जिसमें वायुमण्डल की हवा स्वच्छ हो जाती है। (13)

इतना ही नहीं यज्ञीय धूएँ वायु मण्डल में घने रूप को प्राप्त होते हैं। उन घने रूपों का सम्पर्क जब सूर्य से होता तब घनीभूत द्रव्य हवा के दबाब से वर्षा के रूप में प्रकट हो जाता है। इस वर्षा से धरती गीली हो जाती है और गीली धरती में बीज उग आते हैं। इस तरह यज्ञ से पर्यावरण संतुलन बना रहता है। (14)

निष्कर्ष :

इस प्रकार हमारे देश की संस्कृति में ऋषि मुनियों ने जो जीवनशैली जीने का ज्ञान दिया है उसका जिसने पालन किया तो पर्यावरण कभी अंसतुलन नहीं होगा। संस्कृत साहित्य में ज्ञान का भंडार है। आज जिस वैश्विक समस्या पर्यावरण संरक्षण पर विचार किया जा रहा है उसे ऋषि मुनियों ने अत्यन्त सरलता से संरक्षित किये हुए थे। पेड़ पौधों के प्रति देवत्व का भाव रखना पर्यावरण संरक्षण का मूल आधार है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मम्मट - काव्या प्रकाश, प्रथम उल्लास (2)
2. ऋग्वेद - 1,89,6
3. वायु पुराण- 28-19
4. वायु पुराण- 28-18
5. वायु पुराण- 41-7
6. वायु पुराण- 41-35
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मांड खंड, अध्याय-16/36.41.44
8. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मांड खंड, अध्याय-16/35
9. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मांड खंड, अध्याय-16/45
10. ऐतरेय उपनिषद्
11. अथर्ववेद 1/10/17
12. कुमारसंभवम् 5/28
13. अभिज्ञानशांकुतलम्, चतुर्थ अंक, श्लोक-1
14. मनुस्मृति, 3/76

❖❖❖